| विषय | हिन्दी |
|---|---|
| प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक | **P1: आधुनिक हिंदी कविता-1** |
| इकाई सं. एवं शीर्षक | **M21 : हिंदी आलोचना में अज्ञेय का मूल्यांकन** |
| इकाई टैग | **HND_P1_M21** |


| निर्माता समूह | |
|---|---|
| प्रमुख अन्वेषक | **प्रो. गिरीश्वर मिश्र**<br>कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001<br>ईमेल : misragirishwar@gmail.com |
| प्रश्नपत्र समन्वयक | **प्रो. चित्तरंजन मिश्र**<br>प्रोफेसर, हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग, दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर (उ.प्र.)<br>ईमेल : chittranjanmishra@gmail.com |
| इकाई लेखक | **डॉ. सूर्यनाथ सिंह**<br>जनसत्ता, दिल्ली<br>ईमेल : suryansingh@gmail.com |
| इकाई समीक्षक | **प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित**<br>प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र)<br>ईमेल : suryadixit123@gmail.com |
| भाषा संपादक | **श्री अरुण कुमार त्रिपाठी**<br>प्रोफेसर एडजंक्ट<br>महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001<br>ईमेल : tripathiarunk@gmail.com |


**पाठ का प्रारूप**

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. प्रयोगवादी धारा में आलोचना की शुरुआत
4. प्रगतिवाद को चुनौती
5. अज्ञेय की आलोचकीय दृष्टि
6. विवादों के बावजूद अज्ञेय की स्वीकार्यता
7. निष्कर्ष

## 1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के उपरांत आप-

- प्रगतिवादी धारा की आलोचना को अज्ञेय की चुनौतियों के बारे में बता सकेंगे,
- अज्ञेय की विचार दृष्टि समझ सकेंगे,
- हिंदी आलोचना में अज्ञेय के विरुद्ध और समर्थन में आए विचारों को रेखांकित कर सकेंगे,
- अज्ञेय के आलोचनात्मक अवदान पर प्रकाश डाल सकेंगे।

## 2. प्रस्तावना

अज्ञेय मूलतः कवि थे। आलोचना उनकी रचना का मुख्य विषय नहीं था। कई मौकों पर आलोचना के प्रति उनका नकार भाव ही उजागर हुआ है। पर जिस दौर में उन्होंने हिंदी कविता की नई लीक बनाने की कोशिश की, हिंदी आलोचना का स्वभाव काफी रूढ़ हो चला था।

अज्ञेय ने जिस वक्त लिखना शुरू किया, वह आजादी के बाद का दौर था। छायावादी कविता में रहस्य और रूमान के विरोधस्वरूप हिंदी कविता ने मनुष्य की भौतिक समस्याओं यानी उसके जीवन-यापन से जुड़ी परेशानियों को उठाना शुरू कर दिया था। गरीब, अशक्त, बदहाल लोगों की समस्याओं को रेखांकित किया जाने लगा। आजादी के बाद जो जगह-जगह अव्यवस्था दिखाई देने लगी थी, उसका विरोध कविता में उभरना शुरू हो गया। सामान्य मनुष्य और उसके भौतिक कार्य-व्यापार को महत्त्व दिया जाने लगा। कहा जाने लगा कि आम आदमी के दैनिक जीवन से जुड़ी गतिविधियां, मनोभाव ही साहित्य का वास्तविक विषय हैं। इनसे अलग रहस्य-रोमांस, प्रकृति वर्णन की बातें काल्पनिक और अवास्तविक हैं। इनसे साहित्य अपने सरोकारों, अपनी असल जिम्मेदारियों से दूर चला जाता है। यह समाज के साथ धोखा है। ऐसे विचारों को मार्क्सवादी सिद्धांतों ने पूरी दुनिया में प्रभावित-पोषित किया था। साहित्य को अभिजन वर्ग यानी समाज के विशिष्ट, एलीट कहे जाने वाले वर्ग के दायरे से बाहर निकाल कर सामान्य जन के बीच लाने की मुहिम चल पड़ी। इस तरह न सिर्फ कविता, कहानी, नाटक जैसे रचनात्मक लेखन के जरिए, बल्कि आलोचना के माध्यम से भी इस मुहिम को आगे बढ़ाया जाने लगा। आलोचना के जरिए इसे गति प्रदान करने का प्रयास अधिक हुआ, क्योंकि इस रास्ते से साहित्य को दिशा देना, साहित्य के मानदंड स्थापित करना ज्यादा आसान था। रचनात्मक लेखन के माध्यम से प्रगतिवादी सिद्धांतों को स्थापित करना उस तरह संभव नहीं था। प्रगतिवादी आलोचना ने लगभग यह तय कर दिया था कि साहित्य में क्या लिखा जाना चाहिए या किस तरह के लेखन को साहित्य माना जाना चाहिए।

## 3. प्रयोगवादी धारा में आलोचना की शुरुआत

यहां यह समझ लें कि प्रगतिवादी चेतना के पहले हिंदी में आलोचना की क्या स्थिति थी। जैसा कि सुविदित हैं, 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई थी और उसके बाद साहित्य की दिशा काफी बदल गई थी। इससे रहस्य और रूमान की बजाय यथार्थ चित्रण को बल मिला। यही वह समय है जब हिंदी में छायावादी दौर की समाप्ति की घोषणा की गई। छायावादी दौर तक हिंदी में आलोचना की स्थिति बहुत ठीक नहीं थी, इसलिए कि तब तक साहित्य के मूल्य स्थापित नहीं थे। तब तक छायावादी रचनाकार जो कुछ आलोचनात्मक टिप्पणियां लिखते थे, उनमें उनकी रचनात्मक प्रक्रिया आदि का ज्यादा महत्त्व दिया जाता था। साहित्य के मूल्य क्या हों, प्रतिमान क्या हों, इस पर चर्चा कम होती थी। प्रगतिवाद की शुरुआत मार्क्सवादी सिद्धांतों पर हुई थी। मार्क्स और लेनिन ने न सिर्फ सामाजिक बदलाव के प्रतिमान दिए, बल्कि रचना के भी निकष तय कर दिए थे। इसलिए

प्रगतिवाद का दौर शुरू हुआ तो न सिर्फ रचनात्मक लेखन के, बल्कि समीक्षा के सिद्धांत उसमें ज्यादा प्रमुखता से उभरे। अत: प्रगतिवादी आलोचना ने समकालीन साहित्य के सिद्धांतों को प्रमुखता से स्थापित करना शुरू कर दिया।

मगर जल्दी ही दुनिया भर में इस चेतना के विरुद्ध एक अलग स्वर उठना शुरू हो गया। प्रगतिवाद को अधूरी जन चेतना के रूप में व्याख्यायित किया जाने लगा। तर्क दिया जाने लगा कि साहित्य और कलाओं का मकसद सिर्फ यथार्थ चित्रण नहीं होता। मनुष्य की बाहरी समस्याओं को रेखांकित कर, उसके हक में आवाज उठा कर मनुष्य या फिर समाज की वास्तविक भूख को पूरा नहीं किया जा सकता। अनुभूति के स्तर पर मनुष्य कई बार कल्पना की दुनिया में भी जीता है। उसके भीतर सौंदर्य की अनुभूति भी होती है। साहित्य और कलाओं का मकसद मनुष्य की सौंदर्यात्मक अभिरुचि को परिष्कृत करना है।

अज्ञेय ने साहित्य और कलाओं के वास्तविक उद्देश्य को यथार्थ के बजाय मनुष्य के आंतरिक सौंदर्य से जोड़ा। इसके लिए उन्होंने भारतीय परंपरा में जड़ें तलाशने की कोशिश की। आधुनिकता और परंपरा के बीच समन्वय स्थापित करने की कोशिश की। प्रगतिवाद ने जिस परंपरा को दकियानूसी, रूढ़ और त्याज्य करार देकर आधुनिकता और तार्किकता के नाम पर नए यथार्थ को स्वीकार किया था, अज्ञेय ने उसका प्रतिकार किया। अनेक अवसरों पर उन्होंने प्रगतिवाद को चुनौती दी तथा उसके खोखले तर्कों पर प्रहार किया।

उन्होंने जगह-जगह सभा-सम्मेलनों में तार्किक ढंग से प्रगतिवादी सिद्धांतों को अपूर्ण साबित करने की कोशिश की। साहित्य और कला संबंधी उनके तमाम भाषणों और लेखों में प्रगतिवादी-वामपंथी साहित्यिक धारा के विरुद्ध तर्क भरे पड़े हैं। इस तरह अज्ञेय ने अपने समय के आलोचकों से मुठभेड़ की, उनके विरुद्ध नए आलोचनात्मक औजार विकसित किए।

जिस समय अज्ञेय ने प्रगतिवादी-वामपंथी साहित्य-धारा को चुनौतियां देनी शुरू की थी, उस वक्त तक प्रगतिवादी धारा काफी सशक्त हो चुकी थी। इस तरह उसका अज्ञेय पर प्रहार भी तीखा और प्रबल होना स्वाभाविक था। अज्ञेय पर छद्म लेखन, जीवन की वास्तविकताओं से आंख फेरने वाले कवि, अमेरिकी एजेंट होने आदि जैसे आरोप लगाए गए। मगर अज्ञेय ने तमाम आरोपों को खारिज किया, अपने लेखन और साहित्यिक सक्रियता से प्रयोगवादी रचनाकारों का एक बड़ा समूह तैयार किया, जो आज तक उनकी स्थापनाओं को आगे बढ़ाता आ रहा है।

ऐसा नहीं कि प्रगतिवादी धारा के सम्मुख प्रयोगवादी धारा का विकास कर अज्ञेय ने मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को नकारने या व्यवस्था-पोषक विचारों को आगे बढ़ाने की कोशिश की। बल्कि उन्होंने मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उसके भावनात्मक पक्षों को भी महत्त्व दिया। उसके कोमल पक्षों को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण करार दिया। साहित्य और कला के लिए मनुष्य के कोमल पक्ष को अनिवार्य तत्त्व के रूप में रेखांकित किया। इस तरह उन्होंने आधुनिता के साथ-साथ परंपरा को भी साहित्य से जोड़ा, प्रकृति और मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्तियों को भी रचना का अंग बनाया, जिसे प्रगतिवादी धारा ने एक तरह से जान-बूझ कर, सिद्धांत के तौर पर छोड़ दिया गया था। प्रगतिवाद ने जहां मनुष्य के श्रम सौंदर्य को महत्त्वपूर्ण माना, वहीं अज्ञेय ने आग्रहपूर्वक स्थापित करने की कोशिश की कि श्रम के साथ-साथ मनुष्य के परिवेश, उसके भौगोलिक वातावरण का सौंदर्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं होता है, क्योंकि वह उससे जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण उपादान उपलब्ध कराता है। मनुष्य के

जीवन में श्रम के अलावा उस सौंदर्य का भी कम योगदान नहीं है, जिससे वह प्रेरित-पोषित होता और शक्ति पाता है।

इन विचारों को स्थापित करने के क्रम में अज्ञेय ने 'भवंती', 'अंतरा', 'शाश्वती' और 'शेषा' जैसी कृतियां प्रकाशित कीं, जगह-जगह भाषण दिए और उन्हें संकलित कर प्रकाशित किए। प्रतीक, दिनमान आदि जिन पत्रिकाओं का उन्होंने संपादन किया, उनके जरिए नई आलोचना के व्यापक स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया। अनेक रचनाकारों से भारतीय साहित्य और समकालीन प्रवृत्तियों से जुड़े लेख लिखवाए। अज्ञेय के ये विचार-प्रधान लेख 'सर्जना' और 'संदर्भ', 'त्रिशंकु', 'धार और किनारे' आदि पुस्तकों में संकलित हैं।

**4. प्रगतिवाद को चुनौती**

अज्ञेय ने प्रगतिवादी आलोचना-धारा की विसंगतियों को भी रेखांकित किया। दरअसल, प्रगतिवादी आलोचना के सारे औजार पश्चिमी काव्यशास्त्र पर आधारित थे। मगर अज्ञेय का कहना था कि भारतीय संवेदना की परख पाश्चात्य प्रतिमानों के जरिए न की जा सकती है, और न की जानी चाहिए। भारतीय रचनाकार बहुत कुछ अपनी परंपरा से लेता है, उसी के जरिए उसकी संवेदनाएं आकार ग्रहण करती हैं। उसे महज आधुनिकता के उपकरणों से समझना-व्याख्यायित करना, उसे जबरन अपनी जड़ों से उखाड़ फेंकना है। इस तरह उसकी मौलिकता कहां रह पाएगी? आलोचना के दबाव में जो कुछ लिखा जाएगा, वह नकली होगा, अपनी जमीन से जुड़ा नहीं होगा। इसलिए आलोचना को भी अपनी जड़ों, अपनी परंपराओं से जुड़ा होना चाहिए। मगर प्रगतिवादी आलोचक पश्चिमी–खासकर मार्क्सवादी–सिद्धांतों को ही औजार बना कर साहित्य समीक्षा करते थे।

अज्ञेय प्रगतिशीलता को प्रश्नांकित करते हैं। अपनी जड़ों से कट कर या उसे अप्रासंगिक करार देकर नितांत आयातित सिद्धांतों, प्रतिमानों पर रचना को तौलने-परखने को वे उचित नहीं मानते। दरअसल, प्रगतिशील चेतना कोई नई चीज नहीं है। वह हर समाज और हर समय में रही है। पुराने विचारों के विरोध में टकराव प्रगतिशील चेतना से ही संभव हो पाता है। हर समाज अपनी स्थितियों के अनुरूप नए मूल्य गढ़ता है। प्रगतिवादी आंदोलन अगर रूसी स्थितियों से पैदा हुआ तो जरूरी नहीं कि उससे उपजे सिद्धांतों को सभी समाजों में उसी तरह स्वीकार कर लिया जाए या वे सभी समाजों में समान रूप से लागू किए जा सकें। हर समाज के मूल्य समान नहीं हो सकते। मार्क्सवादी सिद्धांतों को भिन्न सामाजिक स्थितियों में लागू करने के प्रयास बहुत सफल नहीं हो सके हैं। इसलिए अज्ञेय को भारतीय स्थितियों में उन सिद्धांतों को लागू करने की कोशिश अटपटी जान पड़ती है।

अज्ञेय भारतीय परंपराओं के साथ चलते हुए रचना करने के पक्षधर रहे हैं। ऐसा नहीं कि विद्रोह की चेतना मार्क्सवादी सिद्धांतों के जन्म से पहले भारत में नहीं थी। तमाम सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों के विरुद्ध समाज के भीतर से विद्रोह फूटते रहे हैं और उसी में से नए मूल्य आकार पाते रहे हैं। अज्ञेय उन्हीं मूल्यों के टकराव के भीतर रचनात्मकता के तत्त्व तलाशते हैं। प्रगतिशीलता को वे समर्थ सिद्धांत नहीं मानते। उनके अनुसार पश्चिमी प्रभाव में आई प्रगतिशीलता भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाई है। सहज ग्राह्यता और लचीलापन न होने के कारण वह उन्हीं लोगों के बीच अपेक्षित रूप से स्वीकार नहीं की जा सकी, जिनके हकों के लिए वह संघर्ष का दावा करती रही। फिर जिस संघर्ष की बात करके वह अपने को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश करती है, उसका धरातल कितना पुख्ता है, इस पर भी लंबी बहस की दरकार पेश आती रही है।

जाहिर है, जब सारी आलोचना पद्धति प्रगतिवाद के प्रभाव में चल निकली हो, अज्ञेय के इस तरह प्रतिवाद ने स्वाभाविक रूप से तल्ख प्रहारों को न्योता दिया। अज्ञेय सारा वार अपने ऊपर झेलते और साहित्यालोचन की नई दृष्टि विकसित करते रहे।

**5. अज्ञेय की आलोचकीय दृष्टि**

अज्ञेय ने साहित्य के विविध पक्षों का गहराई से विश्लेषण किया। संप्रेषणीयता, भाषा, काल-चिंतन, परंपरा, समाज और व्यक्ति के अंतस्संबंधों, साहित्य के स्वरूप और उसकी जिम्मेदारियों पर विस्तार से लिखा । उन्होंने अपनी रचनात्मक प्रक्रिया के माध्यम से भी साहित्य में नए मूल्य स्थापित करने का प्रयास किया। सबसे पहले उन्होंने व्यक्ति सत्य या रचनाकार के सत्य की अपेक्षा सामाजिक यथार्थ को तरजीह दिए जाने पर विस्तार से बहस की।

अज्ञेय पर ये आरोप लगते रहे कि वे परंपरा से अभिभूत हैं। उन्हें भारतीय सिद्धांतों से मोह है। पर ऐसा नहीं है। अज्ञेय जितने भारतीय परंपरा से जुड़े हैं, उतने ही आधुनिकता के अंध-मोह के विरोधी भी। वे आधुनिकता के मोह में परंपरा को विसरा देने का प्रतिकार करते हैं। वे वर्ग संघर्ष, जातीय स्मृति, इतिहास आदि पर विस्तार से बात करते हुए कहते हैं कि वर्ग संघर्ष और दमनकारी नीतियों के तहत जातीय स्मृतियों को भी मिटाने के प्रयास होते हैं, पर वास्तविकता यह है कि जातीय स्मृतियां इतिहास के गर्भ में दबी रह कर ज्वालामुखियों की तरह लावा उगलती बाहर निकल आती हैं। इसलिए वे आधुनिक कहे जाने वाले जीवन मूल्यों, औद्योगीकरण, रोज हो रहे नए आविष्कारों, संचार संसाधनों आदि को मानवीय चेतना और स्मृति के लिए खतरा मानते हैं। वे कहते है - "आधुनिक जीवन की प्रवृत्तियां स्मृति के परिदृश्य को लगातार छोटा करती जाती हैं। जिस वर्तमान में हम जीते हैं, जिसमें हमे जीने दिया जाता है, जीने को बाध्य किया जाता है, उसकी व्यस्तता इतनी बढ़ती जाती है कि हमें न स्मरण के लिए अधिक समय मिले और न हमारी चेतना ही उधर प्रवृत्त हो पाए। नए आविष्कार, नई मांगों को पैदा करने का काम करते हैं और नई जानकारियां स्मृति को जड़ित करने का। तेजी से विकसित होते संचार माध्यम इसमें भरपूर योग देते हैं, वे उपभोग को एक मूल्यवत्ता से मढ़ते हैं और सनसनी को आनंद का पर्याय बनाते हैं।"

इस तरह अज्ञेय परंपरा और आधुनिकता के बीच भेद करते और स्वीकार्यता-अस्वीकार्यता के बिंदु तय करते हैं। वे परंपरा के प्रति पक्षधरता जाहिर करते हुए भी परंपरा के मोह में बंधे नहीं हैं। समय के अनुसार बदलती स्थितियों को केंद्र में रखते हैं। संस्कृतियां बदलती हैं तो समय के सवाल भी बदल जाते हैं। भारतीय संस्कृति भी कोई स्थिर चीज नहीं है, जिसकी हर समय दुहाई दी जाती रहे।

**इसी तरह** अज्ञेय ने **कल्पना और आदर्श** को भी कला के लिए उसी तरह महत्त्वपूर्ण माना, जिस तरह यथार्थ को। उनकी दृष्टि में यथार्थ विषयीगत होता है, वस्तुनिष्ठ नहीं। उन्होने मार्क्सवादी यथार्थ को अपर्याप्त मानते हुए कहा कि "केवल सब्जेक्टिव यथार्थ में ही अर्थवत्ता का प्रश्न उठ सकता है, विषयीगत यथार्थ ही कला का यथार्थ होता है और उसी में अर्थ हो सकता है और इसीलिए अर्थ की खोज हो सकती है। निस्संदेह वस्तु-जगत के तथ्यों के परिवेश की स्थिति और क्रिया-व्यापारों की सामाजिक संबंधों की पकड़ या समझ विषयी की जैसी होगी, जीवन मात्र से उसका जैसा संबंध होगा, उससे वह विषयीगत यथार्थ भी प्रभावित होगा। उसी पर उसके पाए हुए अर्थ की मूल्यवत्ता निर्भर करेगी, लेकिन कला-वस्तु से परिवेश के संबंध का यह दूसरा वृत्त है। पहले और दूसरे वृत्त के बीच स्वयं कलाकार खड़ा है।"

अज्ञेय ने साहित्य के सैद्धांतिक पक्षों पर बात करने के अलावा अपने समकालीन और पूर्ववर्ती रचनाकारों पर भी आलोचनात्मक लेख लिखे। इस मामले में उनकी समीक्षा-दृष्टि अपने पूर्ववर्ती समीक्षकों से कई मायनों में भिन्न है। वह नए प्रतिमान विकसित करती दिखती है। उन्होंने रेडियो में दिए गए एक साक्षात्कार में कहा- 'ऋण स्वीकारी हूं मैं, संस्कृत कवियों–कालिदास, भवभूति, बाल्मीकि और अंग्रेजी कवियों–टेनीसन, लांगफेलो, ब्राउनिंग आदि का। उन्होंने केशव, निराला, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, पंत, मैथिलीशरण गुप्त, जैनेंद्र, हजारी प्रसाद द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रायकृष्ण दास, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर, फणीश्वरनाथ 'रेणु' आदि की रचनाओं का भी विश्लेषण किया । उन्होंने भक्ति काव्य और रीति काव्य पर भी दृष्टिपात किया। कबीर की उन्होंने भरपूर प्रशंसा की, पर तुलसी उनकी दृष्टि में अधिक प्रेरक कवि नहीं हैं।

इस तरह अज्ञेय ने छिटपुट ही सही, पर अपने पूर्ववर्ती और समकालीन साहित्य पर प्रचलित समीक्षा धारा से अलग दृष्टि देने का प्रयास किया। लगभग सभी महत्त्वपूर्ण रचनाकारों और अलग-अलग मिजाज के लेखन पर उन्होंने दृष्टिपात किया। इस तरह एक प्रकार से उन्होंने समूचे हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों पर अपने विचार प्रकट किए। अज्ञेय भले ही व्यवस्थित आलोचक न रहे हों, उनके विचारों से कहीं-कहीं भले ही असहमति की गुंजाइश हो, पर इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि उन्होंने अपने समय में समीक्षा को नई धारा दी।

**6. विवादों के बावजूद अज्ञेय का मूल्यांकन**

अज्ञेय को लेकर विवाद इसलिए अधिक हुए कि उन्होंने प्रकट रूप से स्थापित प्रगतिवादी धारा के विरोध में हिंदी कविता की नई धारा विकसित करने की कोशिश की। खासकर तारसप्तक के प्रकाशन के बाद सबसे अधिक विरोध शुरू हुआ और जीवनपर्यंत आक्रमण होते रहे, पर अज्ञेय अडिग होकर अपनी धारा को विकसित करते, बढ़ाते रहे। यह इस बात का प्रमाण है कि प्रगतिवादी धारा के सैद्धांतिक आग्रहों और साहित्य-मूल्यों के प्रति कठोर रुख की वजह से बहुत सारे समकालीन रचनाकार नई राह लेने को तैयार थे और उन्होंने अज्ञेय के प्रयासों का भरपूर समर्थन किया। जिस समय अज्ञेय पर अमेरिकी 'दलाल' होने का आरोप लगाया जा रहा था कि वे प्रगतिवादी खेमे में सेंध लगाने, उसमें तोड़-फोड़ करके उसे नष्ट कर देने की अमेरिकी योजना को आगे बढ़ाने का काम कर रहे हैं, तब भी अज्ञेय के साथ अनेक युवा रचनाकार जुड़े रहे। इसकी एक वजह यह भी थी कि अज्ञेय ने उस तरह कोई कठोर सिद्धांत नहीं गढ़े, जैसे प्रगतिवादी धारा ने मार्क्सीय सिद्धांतों के तहत कठोरता ग्रहण की थी। उन्होंने व्यक्ति स्वातंत्र्य को प्रमुख मानते हुए सामाजिक दायित्वों को पूरा करने का आग्रह किया था। यह बहुत सारे रचनाकारों के लिए सहज और ग्राह्य रास्ता था, परंपरा के अनुरूप।

अज्ञेय का विरोध सबसे पहले तारसप्तक के सैद्धांतिक पक्षों को लेकर शुरू हुआ था। नंददुलारे वाजपेयी ने तारसप्तक की आलोचना 'प्रयोगवादी रचनाएं' शीर्षक से लेख लिख कर की। उन्होंने कहा कि "प्रयोगवादी रचनाएं पूरी तरह काव्य की चौहद्दी में नहीं आतीं। वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त हैं। वे वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नहीं हैं और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पूरा नहीं करतीं।"

यह विचित्र किस्म का विरोध था, जब छायावादी मूल्यों का बखान करने वाले आलोचक सामाजिक यथार्थ की बात कह कर अज्ञेय के विरोध में उतर आए थे। पर अज्ञेय के समर्थन में यानी उनके काव्य-चिंतन को स्वीकार करने वाले, उनके पक्ष में खड़े होने वाले कई आलोचकों ने तारसप्तक के बहाने प्रगतिवादी सिद्धांतों का पोषण करने वाले

आलोचकों को खारिज करने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

नामवर सिंह ने कविता के नए प्रतिमान में लिखा था: " कविता ही कवि का परम वक्तव्य है–तारसप्तक में अज्ञेय का यह वक्तव्य ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। नई कविता की आलोचना में इस वक्तव्य का निर्वाह दृढ़ता से हुआ होता, तो आज स्थिति कुछ और होती।" गौरतलब है कि नामवर सिंह जैसे आलोचक ने – जो अज्ञेय के काव्य-चिंतन के प्रखर विरोधी रहे– तारसप्तक के बहाने कवि की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रमुख माना। एक तरह से उन्होंने वैचारिक जकड़बंदी का विरोध किया।

'आधुनिकबोध की पीड़ा- अज्ञेय' शीर्षक से लिखे लेख में निर्मल वर्मा ने लिखा: "इसका एक छोर अगर अज्ञेय की आत्म-सुरक्षा से जुड़ा है, तो दूसरा छोर हिंदी साहित्य के उस भयावह वातावरण से बँधा है–जिसमें अज्ञेय ने अपने सर्वश्रेष्ठ वर्ष गुजारे हैं। शायद ही किसी लेखक ने अपने ऊपर इतने मूढ़, वैमनस्यपूर्ण, कर्कश प्रहार झेले हों, जितने अज्ञेय ने। एक समय था जब उन्हें फ्रायड और लारेंस का नकलची अनुयायी बताया गया–मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों का शिकार, फिर शीतयुद्ध के दिनों में वे अमेरिकी एजेंट घोषित किए गए। बाद के दिनों में उन्हें 'गिराने' के लिए समीक्षकों ने मुक्तिबोध को अस्त्र बनाया। वही मुक्तिबोध जो अपने जीवनकाल में इतने उपेक्षित रहे।" (सर्जना पथ के सहयात्री)

ऐसे अनेक आलोचकों-रचनाकारों, मसलन विद्यानिवास मिश्र, नंदकिशोर आचार्य, रमेशचंद्र शाह, चंद्रकांत बंदिवडेकर, कृष्णदत्त पालीवाल आदि ने अज्ञेय के रचनात्मक अवदान पर खूब सकारात्मक लिखा है। अज्ञेय ने न केवल अपनी रचनात्मक मेधा और समालोचनात्मक टिप्पणियों से हिंदी कविता, कहानी, निबंध, आलोचना, नाटक आदि को नई दृष्टि दी, बल्कि वे वत्सल निधि के शिविरों और तमाम दूसरी गतिविधियों-आयोजनों के जरिए उन्होंने अपने समय के युवा रचनाकारों को जोड़ा, उन्हें वैचारिक आदान-प्रदान का मंच प्रदान किया। वे निरंतर सकारात्मक साहित्य सृजन की भूमि तैयार करने में लगे रहे। इस तरह हिंदी में प्रगतिवाद से विलग एक नई आलोचना-धारा का अविरल प्रवाह बना।

## 7. निष्कर्ष

अज्ञेय ने प्रगतिवादी धारा के विरुद्ध प्रयोगवादी धारा का विकास इस तर्क के साथ प्रस्तुत किया कि मनुष्य के जीवन में केवल श्रम का सौंदर्य महत्त्वपूर्ण नहीं होता, उसके भौगोलिक परिवेश का सौंदर्य भी उतना ही अहम है, जिससे उसे जीवनी शक्ति प्राप्त होती है। मगर प्रगतिवादी धारा को अज्ञेय का यह तर्क स्वीकार नहीं था। उसने अज्ञेय के लेखन को न सिर्फ अवास्तविक करार दिया, बल्कि अज्ञेय पर व्यक्तिगत आक्षेप लगा कर भी उन्हें गलत साबित करने की कोशिश की गई। प्रगतिवादी धारा के सम्मुख प्रयोगवादी धारा का विकास कर अज्ञेय ने मनुष्य की बुनियादी जरूरतों को नकारने या व्यवस्था-पोषक विचारों को आगे बढ़ाने की कोशिश की। उन्होंने मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के साथ-साथ उसके भावनात्मक पक्षों को भी महत्त्व दिया, उसके कोमल पक्षों को भी उतना ही महत्त्वपूर्ण करार दिया। अज्ञेय की दृष्टि में यथार्थ वस्तुगत नहीं, बल्कि विषयीगत होता है। वह रचनाकार की दृष्टि पर निर्भर करता है। अज्ञेय परंपरा को त्याज्य नहीं मानते। उन्होने संस्कृत, अंगरेजी, भक्तिकालीन, रीतिकालीन और समकालीन रचनाकारों पर बात करते हुए एक तरह से समूचे भारतीय साहित्य के मिजाज को व्याख्यायित करने का प्रयास किया। अज्ञेय के लेखन और विचारों को लेकर बहुत विवाद हुए, पर अज्ञेय ने उन सबकी परवाह न करते हुए हिंदी कविता और आलोचना को नई धारा दी।